कामायनी मानवीय मूल्य-व्यवस्था बोध

डॉ. रेणु बाला

एसोशिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग , आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

Abstract;The story of Kamayani is basically an imagination, a fantasy. In which Prasad ji made it an important book by making an analytical blend of the social environment, life values, socialite of his time. This is the reason that its characters Manu, Shraddha and Ida - are the symbols of humanity, love and wisdom. Kamayani became important through these symbols. Because the analysis of life presented by Prasad ji in Kamayani through these symbols is as important today as it would have been in Prasad ji's time. The pride of the goddesses as creators of the universe, how they themselves created the universe and behaved in a very bad way, but how they caused the destruction of the three worlds is a mythological historical matter and is also a lesson towards humanity towards their arbitrary behavior towards the earth.

The philosophy of Kamayani is indicative of the contemporary social life perspective. Prasad is sensitive towards the social problems of his time and towards human and human life. Prasad, like other Indian philosophers, does not believe in the reality of this world of life. He is a mystic but even his mysticism does not point to any amorphous existence beyond the known truth. Prasad sees the gross and subtle, the material and the conscious as states of the same element. Neither the subtle is different from neither the gross nor the conscious from the material. From the very beginning of Kamayani he has discussed the false distinction between the material and the conscious.

'कामायनी' के प्रस्थान बिंदु को देखें तो यह काव्य-रचना की एक मूल्य-व्यवस्था से दूसरी रचना-मूल्य-व्यवस्था में प्रवेश का सूचक है। इसमें न सिर्फ मुक्तकों वाली एक भाव-स्थिति के बजाय मनुष्य और परिस्थिति के घात-प्रतिघात से बनने वाली कथात्मकता-घटना-क्रम है वरन् इस महाकाव्य की शुरूआत श्रृंगार के बजाय चिंता से होती है। यह चिंता वास्तव में पहले के काव्य और भद्र समाज में निहित एक मूल्य-व्यवस्था को लेकर है जिसमें नित्य निर्बाध भोग-विलास, उद्दाम वासना, शृंगार, सुरा-सुंदरी और सुरभिमय जीवन में डूबी निष्क्रियता, दंभ और क्रूरता से युक्त अमरता का भ्रम आदि सब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। ऐसे चरणों)कामों (से 'धरती 'प्रतिदिन 'आक्रांत 'होकर थर-थर काँपती थी। यदि थोड़ा भी ध्यान दें तो यह रचना -मूल्य-व्यवस्था वास्तव में रीतिकालीन मूल्य-व्यवस्था नजर आती है। यह बात सही है कि हम 'कामायनी' की कोई भी व्याख्या उसकी आख्यानपरकता की नितांत उपेक्षा करके नहीं कर सकते, लेकिन इसके भीतर से निकलने वाले संकेतों को भी हम छोड़ कर नहीं चल सकते, दोनों ही स्तरों पर 'कामायनी' आधुनिकता से युक्त है। रीतिकालीन रचना-मूल्य-व्यवस्था के बजाय चिंता को महत्व देना उसे प्रस्थान बिंदु बनाना इसी आधुनिकता का प्रमाण और परिणाम दोनों हैं। यह चिंता वास्तव में संस्कृति और समाज में मनुष्य की भूमिका से जुड़ी है, उसकी भूमिका की पहचान कराने वाली है। 'चिंता सर्ग 'में एक मूल्य-व्यवस्था के ढह जाने का, उसके परिणाम का दुख तो है-

''गया सभी कुछ गया मधुरतम...
भरी वासना-सरिता का वह
कैसा था मदमत्त प्रवाह
प्रलय-जलधि में संगम जिसका
देख हृदय था उठा कराह।''[cv]

साथ ही उसकी तार्किक परिणति की समझ भी है-

''क्यों न विशृंखल होती सृष्टि।''[cvi]

निर्बाध भोग-विलास और वासना की बहती सरिता, दंभ तथा अमानवीयता की तार्किक परिणति है-सृष्टि का 'विशृंखल 'होना। 'कामायनी' में एक मूल्य-व्यवस्था के परिणाम का जो गहरा दुख है उसमें उस मूल्य-व्यवस्था-रचना व्यवस्था की समीक्षा छिपी हई है, और 'चिंता 'वास्तव में उसे बचाने की नहीं है वरन उसके कारणों की खोज है। परिणाम का दुख वास्तव में हमें उसके कारणों की ओर ले जाता है तथा- 'हम क्या थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी 'की चिंतन-प्रणाली से हम जुड़ जाते हैं। मनु जब पुरानी मूल्य-व्यवस्था के कारणों और उसकी तार्किक परिणति को जान लेता है तो उसमें ''शान्ति और जागरण चिन्ह-सा लगा धधकने अब फिर से।''[cvii] तथा काम की 'अनादि वासना 'नवीन होकर जाग उठती है। यह 'काम 'पुरानी काम वासना का पर्याय नहीं है-यह रीतिकालीन 'शृंगार 'का पर्याय नहीं है वरन् उसका रूप अत्यंत व्यापक है। श्रद्धा काम-गोत्रजा है, इसलिए उसका एक नाम कामायनी भी है। वह लोकमंगल की भावना का पर्याय भी है-

"वह कामायनी जगत की
मंगल कामना अकेली।"[cviii]

श्रद्धा काम-भावना उत्पन्न करते हुए मनु के हताश-मन में रागपूर्ण आत्मविश्वास का संचरण करती है। वह उसे कर्म के लिए प्रेरित करती है-

"दुख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान
काम से झिझक रहे हो आज
भविष्यत् से बनकर अनजान।"[cix]

श्रद्धा स्पष्ट करती है कि श्यह विश्व कर्म रंगस्थल है 'और इसमें 'कर्म यज्ञ से जीवन के/सपनों का स्वर्ग मिलेगा। 'वह मनु को 'कर्म का भोग/भोग का कर्म 'नामक दर्शन सिखाती है और उसे ललकारती है-

"शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विश्व में गूंज रहा जयगान।"[cx]

'कामायनी 'में काम वास्तव में कर्म, वासना, प्रेम, जिजीविषा, विश्वास, लोकमंगल आदि अनेक भावनाओं का पुंज दिखलायी पड़ता है। उसमें देश-प्रेम, विश्व-प्रेम और प्रकृति-प्रेम इत्यादि की भावनाएँ धुली-मिली है। काम का पौराणिक रूप मुख्यता श्वासना ' के देवता वाला है और उसका शास्त्रीय-रीतिवादी रूप श्रृंगार तथा नायिका-भेद वाला। प्रसाद जी ने इस धारणा में परिवर्तन करते हुए उसे "जीवन परिचालिनी शक्ति के रूप में बहुत ही प्रशस्त उपस्थापन किया है। काम न केवल सृष्टि के उद्भव ही में है बल्कि वह सृष्टि के निर्माण एवं विकास में भी उपादेय है।"[cxi] प्रसाद जी ने 'कर्म का भोग और भोग का कर्म 'बताकर 'गीता 'के निष्काम कर्म के सिद्धांत में भी उलटफेर किया है। प्रसाद जी के अनुसार कर्म का कोई न कोई फल अथवा परिणाम निकलना ही चाहिए। यही नहीं, श्रृंगार और भोग की मूल्य-व्यवस्था को बदलने के क्रम में प्रसाद जी ने नारी-संबंधी धारणा को भी बदला है, श्रृंगार और भोग की मूल्य-व्यवस्था में नारी मूलतः भोग्या रही है। लेकिन प्रसाद जी के अनुसार वह कर्म की प्रेरणा देने वाली, सृष्टि में मंगल करने वाली तथा विश्व विजय और मनुष्य को शक्तिशाली बनाने वाली कल्याणकारी कारक है। इसलिए वह कोई मायावनी-अविद्या नहीं है जिसे त्यागना साधक का प्राथमिक कर्तव्य हो, बल्कि वह सम्मान और आदर की पात्र है-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो।"[cxii]

इस तरह, 'कामायनी 'का चिंता से आरंभ होना और श्रद्धा द्वारा मनु को कर्म की ओर प्रेरित करना वास्तव में साहित्य को रीतिवादी रूढ़िवाद के संकुचित दायरे से निकाल कर उसे जीवन-जगत और संस्कृति की व्यापक चिंताओं से सम्बद्ध करना है, साथ ही गीता के निष्काम-कर्म तथा मध्यकालीन मायावाद से भारतीय मानस को मुक्त करते हुए नारी की उचित भूमिका की पहचान कराना है, और इस तरह 'कामायनी 'पुरानी रचना-मूल्य-व्यवस्था के बजाय आधुनिक रचना-मूल्य-व्यवस्था की प्रस्तावना करती है जिसमें

जीवन जगत, मनुष्य और देश-हित के प्रश्न चिंतन के केन्द्र में आते हैं। अपनी आख्यानपरकता, प्रतीकवाद के बावजूद 'कामायनी ' में जीवन-जगत और मनुष्य के महत्व की प्रतिष्ठा मिलती है, उसकी जटिल समस्याओं का रेखांकन पाया जाता है।

'कामायनी 'में मनु परलोक अथवा देवलोक की तुलना में मानव-लोक की सृष्टि करते हैं। श्रद्धा और इड़ा इस कार्य में उनकी सहायता करती हैं, यह सृष्टि देव-सृष्टि से आगे बढ़ी हुई सृष्टि है। इसमें मनुष्य के कर्म का सर्वाधिक महत्व है, देव-सृष्टि में कर्महीनता है। यहाँ 'अखिल मानव भावों का सत्य विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य अक्षरों से अंकित 'है। देवताओं का भावों से-विकारों से क्या लेना-देना? देव-सृष्टि काफी हद तक एकायामी है, लेकिन मानव-सृष्टि बहुआयामी। उसमें न सिर्फ भावों-विकारों की संश्लिष्ट बहुविध व्यवस्था होती है वरन् वह अपने बाह्य रूपाकार में भी संश्लिष्टता और बहुआयामिता से युक्त होती है। कामायनी में न सिर्फ श्रद्धा, मनु, इड़ा और प्रजा की विविध भावनाओं-एक-एक भाव के साथ अनेक अनुभावों की व्यवस्था की अभिव्यक्ति है वरन् ग्राम-समाज, साम्राज्य स्थापना के क्रम में नगर, विभिन्न कर्म और विभिन्न वर्ण अथवा वर्गों की बहुविध उपस्थिति है। साथ में प्रकृति का भी-कहीं स्वतंत्र और कहीं मानव द्वारा नियमित-अस्तित्व है। इस तरह, मनुष्य के आंतरिक भावों और बाह्य जीवन की रीतिकालीन एकरसता और एकायामिता के बजाय 'कामायनी 'में उसकी संश्लिष्ट और बहुविध व्यवस्था का चित्रण किया गया है। नव-जागरणकालीन मानववाद की प्रतिष्ठा को यहाँ आसानी से देखा जा सकता है। वास्तव में जहाँ से देव-सृष्टि खत्म होती है, वहीं से मानव-सृष्टि की शुरूआत होती है। श्रद्धा कहती है-

"देव-असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटा कर आज,
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज।"[cxiii]

मनुष्य के इस चेतनता के राज में 'मानवता की कीर्ति अनिल, भू, जल में बंद 'नहीं रहेगी, यानी वह प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करती हुई संपूर्ण जीवन-जगत में, अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाएगी और इस तरह मानवता की विजय होगी -

"शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे पड़े हैं, हो निरूपाय
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय!"[cxiv]

वास्तव में मानवता के विजय की कामना और देव-सृष्टि के ध्वंसावशेषों पर मानव-सृष्टि की प्रस्तावना है 'कामायनी'। यह 'कामना ' और प्रस्तावना संसार को दुःखमय कहकर उससे भागने में चरितार्थ नहीं होती। मनु संसार को दुःखमय कहकर जब उससे भागते हैं, तब श्रद्धा उन्हें रास्ते पर लाती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने सही रेखांकित किया है कि प्रसाद जी ने 'कामायनी 'में मनु की आलोचना के जरिये जीवन-जगत् विरोधी प्रवृत्तियों की आलोचना प्रस्तुत की है और जीवन-जगत् विरोधी प्रवृत्तियों के मूल उद्गम की ओर संकेत किया है। वह मूल उद्गम है -संसार को क्षण भंगुर मानना। कोई क्षणभंगुरता के विचार से वैरागी हो जाता है, कोई

क्षण के आनंद में ही सबकुछ भूल जाना चाहता है। अक्सर आज जो भोगवादी है, कल वही वैरागी भी बन जाता है। प्रसाद जी ने ये दोनों व्यापार मनु में दिखाकर यानी एक ही व्यक्ति में दिखाकर उनके एक ही उद्गम की ओर संकेत किया है। इसलिए रामविलास जी की यह स्थापना एकदम सही है कि ''कामायनी की विषयवस्तु अध्यात्म-चिंतन न होकर इस भौतिक जगत् के मानव की ही संस्कृति है।''[cxv] मानव की यह संस्कृति देव-संस्कृति की तुलना में न सिर्फ इसलिए श्रेष्ठ है कि यह बहुआयामी और विविधता लिए हुए है कि उसमें कर्मशीलता की प्रधानता है वरन् इस रूप में भी श्रेष्ठ है कि वह मूल्यों से युक्त है। इसमें सिर्फ अपना ही सुख मुख्य नहीं है, वह सुख संकीर्ण नहीं है, इसमें सबको सुखी बनाकर अपने सुख को व्यापक, संकीर्णता के बजाय विस्तृत बनाने की अवधारणा पर बल है-

''औरों को हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।''[cxvi]

दूसरों को सुखी बनाना 'श्रृंगार' और 'रति' के जरिये संभव नहीं है जो देव-संस्कृति का 'श्रृंगार' और 'रति''कामायनी 'में अपना मानवीय आकार ग्रहण करता हुआ परिवर्तित होकर 'प्रेम' और 'लज्जा' बन जाता है -यह गुणात्मक परिवर्तन है। इसी तरह देव-सृष्टि की अंधता यहाँ चेतनता और बुद्धि में -इड़ा में परिवर्तित हो जाती है। यह चेतनता और बुद्धि श्रद्धा का भी गुण है, सिर्फ इड़ा का ही नहीं है। डॉ. शिवनाथ के अनुसार बिना''बुद्धि के किसी भी कर्म का संपादन संभव नहीं; कामायनी में श्रद्धा उत्तमोत्तम कर्मों का संपादन-संचालन करती है, अंत में वह लौकिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से मनु की पथप्रदर्शिका भी बनी है; फिर भी कहा जाता है कि श्रद्धा में बुद्धितत्व की कमी है। किंतु किन्हीं अंशों में दोनों)श्रद्धा और इड़ा (में हृदय एवं बुद्धि का सन्निवेश है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।''[cxvii] इस तरह देव-सृष्टि की अंधता के बजाय चेतनता, बौद्धिकता, प्रकाश और ज्ञान-विज्ञान मानव-सृष्टि का लक्षण है। 'कामायनी 'में मनुष्य ने अपने कर्म से सृजनात्मकता, संस्कृति और सभ्यता अर्जित की है। 'कामायनी 'में 'बिम्बविधान 'को अत्याधिक महत्व देने वाले आलोचक श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी को भी 'कामायनी 'में चित्रित मानव-सृष्टि की श्रेष्ठता को स्वीकार करना पड़ा है। ''प्रसाद का पक्ष है कि देव-सृष्टि जहाँ भोग-विलास और महज़ भौतिक सुख-साधनों में डूबी हुई थी वहाँ मनुष्य की सृष्टि कुछ नये मानव-मूल्यों का आविष्कार करती है, जिनमें सबसे प्रमुख है प्रेम करने की क्षमता। मृत्यु पर विजय पाने के लिए मनुष्य प्रेम की क्षमता विकसित करता है, और उसी से जुड़ी सर्जनात्मक शक्ति।''[cxviii]

'कामायनी' में प्रतिपादित मानव-संस्कृति जहाँ एक ओर देव संस्कृति से भिन्न और विशिष्ट है, वहीं वह असुर-संस्कृति से भी अलग अपना खास महत्व रखती है। मनु देव-पुत्र हैं। वह देव-असुर संग्राम और दोनों संस्कृतियों की विशिष्टता से अच्छी तरह परिचित हैं। वह इसे स्पष्ट करता हुआ सोचता है'' -जीवन का लेकर नव विचार/जब चला द्वंद्व था असुरों में प्राणों की पूजा का प्रचार/उस ओर आत्म विश्वास निरत सुर वर्ग कह रहा था पुकार' -मैं स्वयं सतत् अराध्य आत्म मंगल उपासना में विभोर'। यानी 'था एक पूजता देह दीन/दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण।''[cxix] देव-संस्कृति जहाँ आत्ममुग्ध, अहंकारी और

सब कुछ पर अधिकार किए हुए थी, वहाँ असुर-संस्कृति शरीर-सुख में डूबी हुई थी-देह-सुख ही जैसे उसका परम-पूजन कर्म था। ये दोनों ही संस्कृतियाँ अपूर्ण थीं। मानव-संस्कृति निश्चित ही इन कमियों से परे एक पूर्ण संस्कृति होगी जो अन्य मनुष्यों की ही चिंता नहीं करेगी वरन सृष्टि के समस्त चर-अचर प्राणियों की भी चिंता करेगी-ऐसा संकेत हमें 'कामायनी 'से मिलता है। प्रलय से बचकर जब मनु यज्ञ करते हैं तो पशु की बलि नहीं देते तथा उसमें से बचा हुआ अन्न मनु दूसरों के लिए दूर रख आते हैं - ''अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ/कहीं दूर रख आते थे/होगा इससे तृप्त अपरिचित/समझ सहज सुख पाते थे।''[cxx]लेकिन मनु का यह सहज सुख अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। किलात और आकुलि नामक दो असुर पुरोहित उस विप्लव से बच निकले थे - ''असुर पुरोहित उस विप्लव से/बचकर भटक रहे थे/वे किलात आकुलि थे।''[cxxi] वे मनु के पास आए और उन्होंने मनु को पशु-बलि के लिए उकसाया तथा मनु की सुप्त वासना को जगाया। वह समझने लगा' -आकर्षण से भरा विश्व यह/केवल भोग्य हमारा।' श्रद्धा के यह समझाने पर भी कि ''ये जो प्राणी बचे हुए हैं/इस अचला जगती के/उनके कुछ अधिकार नहीं/क्या वे सब ही हैं फीके''[cxxii] मनु की कुछ समझ में नहीं आया और वह भोग-विलास तथा अधिकार-सुख की लालसा में सारस्वत प्रदेश में आ पहुंचा। यहाँ पहुँचकर देव और असुर संस्कृतियों का द्वन्द्व जैसे उसके भीतर ही समा गया'' -मुझमें ममत्वमय आत्ममोह स्वातंत्र्य मयी उच्छृंखलता/हो प्रलय भीत तन रक्षा में पूजन करने की व्याकुलता/वह पूर्व द्वन्द्व परिवर्तित हो मुझको बना रहा अधिक दीन।''[cxxiii] यानी आत्मोह और शरीर सुख की आराधना दोनों के लिए रंगस्थल बन गए मनु। इड़ा की सहायता से सारस्वत-प्रदेश का निर्माण करने के उपरांत मनु भोग-विलास में डूब गए, तथा सब कुछ पर अधिकार कर लेने की वृत्ति ने उन्हें इड़ा पर भी पूर्ण अधिकार के लिए प्रेरित किया, जनता पर उन्होंने पहले ही अधिकार कर लिया जिन पर मनु अत्याचार करते थे। इसका परिणाम हुआ प्रजाविद्रोह और प्रकृति-क्षोभ। युद्ध में मनु घायल हो बेसुध हो गए। फिर श्रद्धा आयी और उन्हें कैलाश पर्वत पर ले गयी तथा पृथ्वी पर राज्य करने के लिए अपने पुत्र मानव को इड़ा के पास छोड़ गयी। मानव का इड़ा के साथ होना इस बात का संकेत है कि मानव-संस्कृति में सहृदयता और चेतना का सुखद-संयोग रहता है, उसमें कर्म का महत्व होता है और सबकी चिंता का मानवीय मूल्य। मनु में जब आसुरी-वृत्ति जगी तो वह न सिर्फ सबको अपने भोग का साधन समझने लगा था वरन् चेतना को भी अस्वीकार करने लगा था। उसकी समझ थी कि यह विश्व उसी समय हमारा 'भोग्य 'बन सकता है ''जिस क्षण भूल सकें हम अपनी/यह भीषण चेतनता।''[cxxiv] जैसे इसी धारणा का विरोध करते हुए श्रद्धा मानव से कहती है''-यह)इड़ा (तर्कमयी तू श्रद्धामय/तू मननशील कर कर्म अभय/इसका तू सब संताप निचय/हरले, हो मानव भाग्य उदय/सब की समरसता कर प्रचार/मेरे सुत !सुन मां की पुकार ।''[cxxv] यानी 'कामायनी 'में जिस मानव-संस्कृति की अभिव्यक्ति की ओर प्रसाद जी ने संकेत किया है वह देव और असुर संस्कृतियों की तुलना में न सिर्फ विशिष्ट और श्रेष्ठ है वरन् वह एक पूर्ण-संस्कृति भी है जिसमें शरीर-सुख और व्यक्तिगत अधिकार या हित के बजाय करुणा और समाज-हित के सरोकार प्रमुख हैं। यानी यह संस्कृति आत्म-सुख की आकांक्षा में दूसरों पर अन्याय-अत्याचार में लीन रहने के बजाय करुणा और जन-कल्याण जैसे मूल्यों की सृष्टि करती है।

संदर्भ ग्रन्थ

कामायनी, पृ .17-18
वही, पृ .17
वही, पृ .39
वही, पृ .298
वही, पृ .60
वही, पृ .65
डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, कामायनी: कला और दर्शन, पृ० 63
कामायनी, पृ .114
वही, पृ .66
वही, पृ .67
परंपरा का मूल्यांकन, पृ० 133
कामायनी, पृ .140
कामायनी सं. लोढ़ा, पृष्ठ 196
हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ .118
कामायनी, पृ .169
वही, पृ .40
वही, पृ .119
वही, पृ .137
वही, पृ .169
वही, पृ .136
वही, पृ .252

☆☆☆